नवगीत वाङ्मय : एक स्वागतयोग्य संकलन

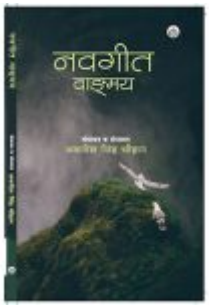

नवगीत के समर्थ आलोचक और युवा नवगीतकार अवनीश सिंह चौहान के संपादन में आया हुआ 'नवगीत वाङ्मय' हमारे सामने है। इसमें मुख्य रूप से नौ समकालीन रचनाकारों के नौ-नौ नवगीत संकलित हैं। इसके मुख्य भाग को 'नवरंग' नाम दिया गया है। इस संग्रह का 'समारंभ' शम्भुनाथ सिंह, शिवबहादुर सिंह भदौरिया और राजेंद्र प्रसाद सिंह जैसे नवगीतकारों से किया गया है, जो नवगीत की आधारशिला रखने वालों में अग्रणी रहे हैं। इस संग्रह के अंत में सुप्रसिद्ध नवगीतकार-संपादक दिनेश सिंह का 20 पृष्ठीय आलोचनात्मक आलेख और अवनीश सिंह चौहान द्वारा लिया गया मधुसूदन साहा का साक्षात्कार नवगीत को समझने में बहुत सहायक है।

इस संग्रह की बहुत बड़ी खासियत मुझे यही लगी कि नवगीतकारों व उनके नवगीतों के संचयन और संकलन का आधार गुणवत्ता है, सत्ता या रिश्ता नहीं। इसमें संपादक न तो कहीं से मोह ग्रस्त दिखता है और न ही किसी खास विचार अथवा भावधारा के प्रति आग्रह या दुराग्रह से बोझिल। इस संग्रह के प्रकाशन का उद्देश्य जानने के पूर्व संपादक का मंतव्य भी जानना ज़रूरी है। संपादक कहता है कि "आज नवगीत जीवन के सतरंगी अनुभवों को उकेरने की एक सशक्त एवं प्रतिष्ठित विधा है। ऐसी विधा, जो न केवल मानव के सुख-दुख, हर्ष-विषाद को व्यंजित करती है, बल्कि उसकी संघर्ष-गाथा को भी सुमधुर स्वर देती है। कहीं देश-दुनिया की वर्तमान व्यवस्था और उसकी विसंगतियों के प्रति खीझ, आक्रोश, प्रतिरोध का स्वर, तो कहीं जीवन के उत्स की मोहक छवियाँ ; कहीं प्रेम, प्रकृति, करुणा का भाव, तो कहीं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों का जयघोष ; कहीं सत्य की खोज, शिवम् की साधना एवं सौंदर्य की उपासना, तो कहीं 'तत् त्वम् असि' का उद्घोष— सब कुछ तो है आज के नवगीत में। किंतु इस सब को जानने-समझने के लिए भावक के पास सम्यक दृष्टि होनी चाहिए, जिससे रचनाकार के 'हृदय-पक्ष' एवं 'बुद्धि-पक्ष' के साथ 'हेतु-पक्ष' का सम्यक दर्शन हो सके और इस प्रकार स्वस्थ, सुखी एवं समृद्ध समाज के निर्माण का सपना साकार हो सके।"

इस संग्रह की सार्थकता को जानने-समझने में इसमें दिए गए आलेख की अपनी एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट भूमिका है। नवगीत की अग्रिम पंक्ति के आलोचक दिनेश सिंह का 'गीत की संघर्षशील जयी चेतना' शीर्षक से लिखा गया यह आलेख गीत-नवगीत के सागर में गोते लगाने वालों के लिए प्रकाश-स्तंभ है। इसमें वे स्पष्ट रूप से यह स्वीकारते हुए देखे जाते हैं कि "आज हिंदी गीत की चर्चा करने का अर्थ है रागबोधी कविता की ऐसी आनुशंगिक रचना की चर्चा करना, जिसके लिए कभी कविता समीक्षकों की नज़रों में समकालीन लेखकीय दायित्वों की चिंता करना बहुत जरूरी नहीं रहा। .... संघर्षशील जयी चेतना गीतों के अथाँतों से खुद-ब-खुद फूटे और धनात्मक रूप से जीवन की ऊर्जस्वित

अर्थ-ध्वनियों से आवेशित कर उसे अपने आप ही सफल कर सके। यह तथ्य इधर के गीतों की संभावनाओं में त्वरा के साथ उभरने लगा है।"

दिनेश सिंह सच ही कहते हैं कि गीतिकाव्य की लंबी यात्रा में बहुत सारी वर्जनाओं सहित भाषा-शिल्प की घेराबंदी टूटी है और नवगीत अपनी त्वरा के साथ उभरने लगा है। मेरी दृष्टि में अब नवगीत गीतिकाव्य परंपरा का समृद्ध रूप होकर भी अतीत के व्यामोह से पूर्णत:मुक्त है। इस मुक्ति की प्रक्रिया में छंद-राग-भाषा और शिल्प आदि के तटबंध टूटे भले हों, पर घाट नष्ट नहीं हुए हैं। शायद इसीलिये नवगीत अपनी ज़गह से फिसला नहीं है और समय की धड़कनों के साथ धड़कते हुए अपने पथ पर गतिशील है। नवगीत के संदर्भ में अर्नेस्ट फिशर के हवाले से दिनेश सिंह कहते हैं— "रचना में समकालीनता से आगे की चेतना कितनी है, यह उसका महत्त्वपूर्ण पक्ष है, गीत का संदर्भ उठाया जाए तो हम आज भी आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता तक की दौड़ लगा सकते हैं। अपने इसी चरित्र के चलते नवगीत के बिंब और प्रतीक नूतन हुए हैं। उसकी भाषा में तकनीकी दुनिया के शब्द धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे हैं।"

इस संकलन का आरंभ ही 'समारंभ' खण्ड से है, जिसमें ('नवरंग खण्ड' में भी यही क्रम है) जन्म वर्ष को आधार मानते हुए जिन तीन प्रतिनिधि नवगीतकारों को स्थान दिया गया है, वह समय व समाज सापेक्ष विवेक की दृष्टि से उचित ही है। मेरी निजी राय में उसमें यदि राजेंद्र सिंह को सबसे पहले स्थान दिया जाता तो नवगीत के विकास-क्रम को अधिक महत्त्व मिलता, फिर भी संपादक की अपनी दृष्टि होती है।

शम्भुनाथ सिंह जिस 'समय की शिला पर' नवगीत की नवीन भंगिमाएँ रचते हैं, उसका प्रकाशन 1968 ई में हुआ, जबकि नवगीत की इन प्रवृत्तियों के आंशिक दर्शन राजेंद्र प्रसाद सिंह के 'मादिनी' (कविता संग्रह, 1955) में ही हो जाते हैं। आगे चलकर वही इस त्रयी में इन नवीन प्रवृत्तियों और शिल्प वाले गीतों को सबसे पहले सन 1958 ई में 'गीतंगिनी' में नवगीत की संज्ञा से भी अभिहित करते हैं, जबकि डॉ शिवबहादुर सिंह भदौरिया तो ('पुरवा जो डोल गयी', धर्मयुग, 1953 से चर्चा में आकर) 1982 ई में प्रकाशित प्रथम 'नवगीत दशक' (सं.— शम्भुनाथ सिंह) में अपनी संपूर्ण आभा व प्रभा के साथ नवगीत को रचते हुए मिलते हैं।

संपादक ने बड़ी सूझ-बूझ से शम्भुनाथ सिंह के बहुचर्चित नवगीत 'समय की शिला पर मधुर चित्र कितने/ किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए' की जगह 'सोन हँसी हँसते हैं लोग' जैसे प्रतिनिधि गीत को लिया है। इसके अलावा जो दो और महत्वपूर्ण नवगीत हैं उनमें— 'देश हैं हम' तथा 'रोशनी के लिए' शीर्षक गीत हैं। इसी तरह से शिवबहादुर सिंह भदौरिया के 'पुरवा जो डोल गई', 'नदी का बहना मुझमें हो' तथा 'जी कर देख लिया' जैसे बहुचर्चित नवगीत संग्रह में रखे हैं। राजेंद्र प्रसाद सिंह के नवगीतों में 'अर्थ मेरा क्या', 'बीच में सड़क हुई खत्म' और 'मैं नयी सभ्यता की देही' से अपने समय के प्रतिनिधि नवगीतों को स्थान दिया है। यहाँ (और आगे भी) संपादक बराबर सचेत और सजग है। इसलिए गीतों के चयन का आधार केवल उनकी या उनके रचयिता की लोकप्रियता नहीं, अपितु उनकी प्रातिनिधिक चेतना और जनपक्षधरता तथा उपादेयता है।

वस्तुत: जिनके लिए यह संकलन निकाला गया है, वे 'नवरंग' खंड में हैं और उसके प्रथम नवगीतकार हैं— गुलाब सिंह। इनके गीतों में जीवन का राग मुखर है। इस जीवन राग में 'दरवाजे पर गाय रँभाती/ घर में रक्षित आग' और 'आँगन में तुलसी का बिरवा/ मन में जीवन राग।' यह सब हमारी भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि प्रतीक हैं। इस प्रकार यह हर घर को प्रयाग-सा पवित्र तीर्थ बनाना चाहते हैं और उस घर के भीतर ऐसा वातावरण सृजित करना चाहते हैं जहाँ 'छंदों में जीने के सुख संग/ शब्दों की विभुता/ दर्द और दुख भी गाने की/ न्यारी उत्सुकता/ भाव, कल्पना, संवेदन/ ले भीतर बसा प्रयाग।' गुलाब सिंह कल्पनाओं के इस यूटोपिया में खो नहीं जाते, बल्कि वह यथार्थ का भी अवगाहन और अवलोकन विवेकपूर्ण और तर्कसंगत दृष्टि से करते हैं— 'शब्दों के हाथी पर ऊँघता महावत है/ गाँव मेरा लाठी और/ भैंस की कहावत है।' इसका वह केवल भोक्ता या मूकदृष्टा भर नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध वह विद्रोही स्वर भी अपनाता है। उसके इस विद्रोही स्वर को 'पत्ते' शीर्षक नवगीत में देखा जा सकता है— 'हम तुम्हारे बाग के/ टूटे हुए/ छूटे हुए पत्ते/ जलेंगे तो आग होंगे।'

सृजन में नवता के आग्रही संग्रह के दूसरे नवगीतकार मयंक श्रीवास्तव नवगीत को पारंपरिक गीत का परिष्कृत रूप मानते हैं और साथ ही उसे रूढ़िग्रस्त होने से बचाने वाला भी। इसीलिए वे ठप्पे से कहते हैं— 'अपनेपन की किरण/ कहीं देखी होगी/ इसके बाद नयन में आए होंगे हम।.../ सृजन हमारा/ कुछ तो बोल रहा होगा/ इसके बाद कथन में आए होंगे हम।' इस सृजन में असल ज़िंदगी कहीं अलक्षित न रह जाए, इसके लिये भी रचनाकार सजग है— 'आग लगती जा रही है/ अन्न-पानी में/ और जलसे हो रहे हैं/ राजधानी में।'

कवितावादियों की बहस के ठीक बीचोबीच चुपचाप 'लाल टहनी पर अड़हुल' के फूल खिलाने वाली शान्ति सुमन ने नाना अवरोधों-विरोधों से गुजरते हुए इस विश्वास के साथ अपने चरण रोपे कि— 'गाँव की पगडंडियों में राजपथ होंगे कई।' वे 'गोबर-माटी सने हाथ की भाषा' को सलीके से पढ़ते हुए 'पसीने' की 'चकमक बूँद पहने साँवली देह' वाले श्रम का सौंदर्य-शास्त्र रचती हैं। वे जीवन को संजीवनी बिंबों से रचना चाहती हैं— 'तुम भाभी के जूड़े का पिन/ भैया की मुस्कान/ पोर-पोर आँगन के/ लाल महावर-सी निखरो।' यह कहकर वे 'खेत में जलती फ़सल-सी ज़िंदगी को उसकी झुलसन से बचाना चाहती हैं और उसे भीतर-बाहर दोनों तरफ़ से रंगीन करना चाहती हैं। इसीलिए वे अपने समय और समाज की वेदना को पूरी ईमानदारी से पढ़ और स्वर दे सकने वाली कवयित्री बन सकी हैं।

नवगीत को पुराने गीत की भाषा-शिल्प और संवेदना की रूढ़ियों से मुक्त करके नवीन कथ्य, लय और शब्द विन्यास से लैस करने की वक़ालत करने वाले राम सेंगर 'जन से कटे, मगन नभचारी' द्वारा नब्ज देखे जाने का मुखर विरोध करने में संकोच नहीं करते। हवा-पानी पराए होने पर भी वह जीवन-लहर की 'लय' पकड़ने की क़वायद करते हैं। सृजन की इस यात्रा में वे भूख को पहले स्थान पर रखना पसंद करते हैं। इस पहल में वे पेट के लिए बाँस पर चढ़ी पुरुष प्रधान समाज की दोयम दर्जे वाली स्त्री जाति की प्रतिनिधि नटी का चित्र उतारना नहीं भूलते— 'चढ़ी बाँस पर नटनी भैया/ अब क्या घूँघट काढ़े।'... 'काम करेगी तभी लगेंगे/ रोटी के गुन्ताड़े।' इसी भूख के मारे सीमांत किसान की बाढ़ में बही हुई दुनिया भी नवगीतकार की नज़रों से अछूती नहीं है— 'कोठा गिरा/ झमाझम ऐसे मेहा बरसे/ भैंस मर गयी/ मठा-दूध को बच्चे तरसे/ दाने-दाने पर साहू ने/ नाम लिखाया है।'

नई कविता ने अस्तित्त्ववाद गले लगाया, पर हिंदी की अन्य विधाएँ (नवगीत विधा को छोड़कर) इससे गुरेज़ करती रहीं। इस दृष्टि से नचिकेता नवगीत के ऐसे तुर्क हैं जिन्होंने नवगीत के भीतर इस गूँज को सुना ही नहीं, डंके की चोट पर कहा भी कि 'अस्तित्ववादी जीवनदृष्टि के प्रभाव और प्रवाह में लिखे गए गीत ही नवगीत हैं।' सबका अस्तित्व में बने रहना आवश्यक है। कोई भी कम महत्तवपूर्ण नहीं है। वह चाहे स्त्री हो या पुरुष। बच्चा हो या बूढ़ा। इसलिए कि बच्चे देश और समाज का भविष्य होते हैं। इसलिए बच्चों के भविष्य का चिंतन भी जरूरी है। बच्चों पर छाए संकट के बादल गीतकार के मन को वैसे ही बहुत मथते हैं जैसे 'कुहरे से ढकी सड़क पर बच्चों को काम पर जाना' समकालीन नई कविता के वरिष्ठ कवि राजेश जोशी को। वे इसे एक हादसा मानते हैं और उसे विवरण की तरह लिखने-पढ़ने वालों को अच्छी नज़र से नहीं देखते। नई कविता के बरक्स हाथ हिलाता खड़ा नवगीत भी वर्ग चेतना के प्रति उतना ही सजग और सचेत है। इसलिए वह समाज को आगाह करना चाहता है— 'खबरदार! खबरदार!/ बच्चे हैं— हँसने-गाने दें/ बच्चे हैं तो/ दुनिया में रंगीनी है/ बासमती चावल की/ खुशबू भीनी है/ इनकी चाहत को/ पाँखें फैलाने दें' और 'नयी सृष्टि का/ बीहन हैं— अँकुराने दें।' नवगीतों में अस्तित्व की ऐसी 'बीहड़ पक्षधरता' बहुत कम देखने को मिलती है। नचिकेता का काव्यकर्म न 'यश से' है और न 'अर्थ' से, वह तो विशुद्ध जनवादी तेवर लिए है। इसलिए वे जैसा देखते हैं, वैसा लिखते हैं— 'महुआ बेच/ अन्न के दाने आयेंगे घर में/ मीठे फल के स्वाद भरेंगे/ हलचल अंतर में/ बेटी के तन पर/ उबटन लहराने वाले हैं।'

प्रस्तुत संग्रह के छठे नवगीतकार वीरेंद्र आस्तिक गीत और नवगीत में काल का अंतर मानते हैं। उनका मानना है कि आस्वाद के स्तर पर गीतों को नवगीतों से अलग किया जा सकता है, जैसे— छायावादी भावबोध का गीत यदि आज रचा जा रहा है, तो वह गीत ही है, नवगीत नहीं है। ये ऐसे समर्थ गीतकार हैं जिन्होंने नवगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सृजन किया है। इन्होंने 'नायक' शीर्षक गीत में राजनीति, समाज और साहित्य को बड़ी कुशलता से एक साथ रखा है— इसी में दलित समाज है और गरीबी और अमीरी भी है, स्लमडॉग है और बनिया भी। दलित जीवन की विसंगति को रखते हुए वीरेंद्र आस्तिक कहते हैं— 'तुम नायक मेरी कविता के/ जबर बना कर तुमको सीढ़ी/ आसमान पर चढ़ जाते हैं' और 'उपन्यास सम्राट बने वो/ जस के तस तुम धनिया-गोबर/ तुमको पढ़-पढ़ हुए यहाँ पर/ बड़े नामवर, बड़े मनीजर/ तुम ही तो 'स्लमडाग' तुम्हीं पर/ लोग पुरस्कृत हो जाते हैं।' आलोचना कर्म के भीतर व्यापे बंदरबांट से आस्तिक आहत हैं। इसीलिए 'अँधा बांटे रेवड़ी/ अपने-अपने को देय' जैसी लोकोक्ति को भलीभाँति समझकर आलोचकों पर तंज करने से भी नहीं चूकते हैं। ज़िंदगी की रिक्तता में अर्थ भरने के लिए पेड़ों से बतियाने और वनवासी बन जाने की इच्छा वाले कवि के यहाँ मृगछौनों के साथ कुलेल करती प्रकृति है, अगरु मिश्रित हवा भी है। इसीलिए तो कवि कहता है— 'गीत लिखे जीवन भर हमने/ जग को बेहतर करने के/ किंतु प्रपंची जग ने हमको/ अनुभव दिए भटकने के/ भूलें, पलभर दुनियादारी/ देखें, प्रकृति छटाएँ।' जहाँ बड़े से बड़े व्यक्तित्व विषम परिस्थितियों के डर से समय को बली मानकर उसके सामने धनुष-बाण रख नत-मस्तक हो जाते हैं, वहाँ वीरेंद्र आस्तिक ऐसी परिस्थितियों को धीरज और दूर-दृष्टि से बदल डालने की हिम्मत दिखाते हैं— 'धीरज, दूर-दृष्टि, आशाएँ—/ मन के घोड़ों की क्षमताएँ/ अन्तर संकल्पों का दीया/ ज्योतित होती हैं इच्छाएँ/ हम न समय से अब तक हारे/ हम न अभी हैं मरने वाले।'

'नवगीत' ('यह गीत के नये स्वरूप का द्योतक है, जो कथ्य, शिल्प, शब्द और छंद की दृष्टि से पारंपरिक गीतों से अलग है') नाम को सार्थक मानने वाले बुद्धिनाथ मिश्र नवगीत के सरोवर में यह गुनगुनाते हुए बार-बार मिलते हैं कि 'मैं वहीं हूँ जिस जगह पहले कभी था/ लोग कोसों दूर आगे बढ़ गए हैं' और 'शाल-वन को पाट, जंगल बेहया के/ आदतन मुझ पर तबर्रा पढ़ गए हैं।' शायद इसीलिये अंधे भौतिक विकास की लू से झंवाए समय से कवि मन बहुत आहत है। इस विकास के चलते 'हर दुकान पर कोका-कोला, पेप्सी की बौछार/ फिर भी कई दिनों का प्यासा मरा राम औतार/ कोशिश की पर नागफाँस को तोड़ न पाया भाग/ अब भी उँगली पर चुनाव का लगा हुआ है दाग/ भूख-प्यास से मरता कोई ?/ यह तो था संजोग।' लुप्त होती अपनी ग्राम्य संस्कृति भी कवि चेतना को कुरेदती हुई मिलती है। इसीलिए वह सत्ता के उन मेलों-ठेलों और खेलों से बहुत नाराज़ है जिनसे खेती-किसानी का नाश हुआ और कर्ज़ तले दबे किसानों को आत्महत्याएँ करने को विवश होना पड़ा— 'पशु-मेले की जगह/ हुआ ऋण मेलों का उत्सव/ दस में सात चढ़े देवों पर/ हाथ लगा पल्लव/ घर के बीज सड़े कुठलों में/ खेत हुए बंजर/ सत्यानाशी नये बीज ने/ छीन लिया गौरव/ कौन मुनाफा कितना लूटे/ ठनी दलालों में।'

'नवगीत अपनी नई भंगिमा, नए शिल्प और लोकचेतना के साथ आधुनिक युगबोध से अनुप्राणित है' को मानने वाले आधुनिक परंपरा के संवाहक कवि डॉ विनय भदौरिया का बदला हुआ गाँव इन्हें पीड़ा देता है और उन्हें अपने पुरनियों की नेह भरी याद सालती है। इसीलिए ये गाँव से बिना कटे अपनी परंपरा से जुड़े रह सके हैं— 'वैसे पुरखों की देहरी से/ अब भी वही लगाव हमें/ मजबूरी में पड़ा छोड़ना/ भइया अपना गाँव हमें।' विनय भदौरिया के यहाँ शृंगार अपनी संपूर्ण नवीनता के साथ विद्यमान है— 'पार हुए सोलह बसंत हैं/ मस्ती-मस्ती में/ अल्हड़ता के किस्से चर्चित/ बस्ती-बस्ती में/ यौवन की मादकता ज्यों/ गदराये महुआ की।' शृंगार से आगे जाते हुए वे आज के सत्य को कुछ इस प्रकार से उद्घाटित करते हैं— 'जुगनुओं को मिल रहा सम्मान/ वक्त के सूरज सहे अपमान/ युग को क्या हुआ है।'

'गीत और नवगीत' की 'अपनी-अपनी मठाधीशी' से आहत इस संग्रह के अंतिम नवगीतकार रमाकांत नवगीत को आन्दोलनधर्मी मानते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वे तर्क भी देते हैं कि 'नवगीत पारंपरिक और नितांत आत्मपरक होते जाते गीत की आँखें खोलने और नये, बदले समय, समाज की ओर देखने का एक आग्रही अभियान था। यह अभियान चला भी नवगीत नाम से। नवगीत में सामाजिक सरोकारों का होना तो ठीक है, पर कइयों ने बिम्ब और प्रतीकों की भरमार को ही नवगीत मान लिया, भले ही ये बिम्ब और प्रतीक अनसुलझे ही रह जाएँ और यदि पहेली बूझने जैसी माथापच्ची से कुछ खुलें भी तो कोई साबुत अर्थ और तथ्य न दे सकें।' कोरी कल्पना की हवाई उड़ान पर कटाक्ष करने वाले इस नवगीतकार के लिए जीवन का यथार्थ बड़ा कटु है— 'हर सुबह उठना/ समय को ताकना फिर/ एक कोल्हू बैल वाला/ हाँकना फिर।' सर्वहारा के टूटे हुए सपनों को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं— 'प्यासों के घर पानी/ कैसी बातें करते हो/ पानी का अधिकारी सागर/ पानी की अधिकारी नदियाँ/ रेगिस्तानों के नसीब में/ अब तक आयीं सूखी सदियाँ/ हे गरीब, तुम कल मरते थे/ अब भी मरते हो।'

कुलमिलाकर. नवगीत के प्रति संपादक की समर्पण वृत्ति, निष्ठा और उसमें लगा श्रम सराहनीय है। नवगीत के प्रेमियों, अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए यह संकलन संग्रहणीय, उपयोगी और स्वागतयोग्य है। यदि इसी ईमानदारी से अन्य लोग भी आगे और संग्रह लाएँ तो नवगीत की दशा और दिशा तय करने में सुगमता रहेगी।

पुस्तक : नवगीत वाङ्मय
प्रकाशक : आथर्सप्रेस, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2021 (संस्करण प्रथम, पेपर बैक)
पृष्ठ : 174, मूल्य रु 350/-
संपादक : अवनीश सिंह चौहान
Available @ AMAZON

समीक्षक सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश) के एक छोटे से गांव में जन्मे और सूरत (गुजरात) में रह रहे डॉ गंगाप्रसाद 'गुणशेखर' हिंदी के स्वनामधन्य सेवामुक्त प्रोफेसर हैं।